International Journal of Applied Research 2018; 4(12): 395-397

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(12): 395-397
www.allresearchjournal.com
Received: 09-10-2018
Accepted: 12-11-2018

डॉ. कंचनलता सिंह
प्रोफेसर, स्वतंत्र गर्ल्स डिग्री कालेज, लखनऊ विश्व विद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ. कंचनलता सिंह
प्रोफेसर, स्वतंत्र गर्ल्स डिग्री कालेज, लखनऊ विश्व विद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

उद्भव और विकास

डॉ. कंचनलता सिंह

शोध सारांश
आलोचना का अर्थ साधारणतः देखना ही माना जाता है पर डॉ0 श्यामसुन्दर दास का कहना है "साहित्य क्षेत्र में ग्रन्थ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों विवेचन करना और उसके सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करना, आलोचना कहलाता है। यह आलोचना काव्य, उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि सभी की हो सकती है। यहाँ तक की स्वयं आलोचनात्मक ग्रन्थों की आलोचना हो सकती है।

कुट शब्दः मध्यकालीन आधुनिक, द्विवेदी युगीन, समकालीन, आलोचना

प्रस्तावना
यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या माने तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।" इस प्रकार किसी भी वस्तु या कृति का सांगोपांग बाह्य आन्तरिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म पर्यवेक्षण करने के उपरान्त जो मत निर्धारित किया जाता है उसे ही आलोचना कहते हैं। पर आलोचना के अन्य पर्यायवाची शब्द समीक्षा, मीमांसा, विवेचना और आलोचना आदि में प्रचलित हैं। हम आलोचना शब्द को संकुचित मानने के पक्ष में नहीं हैं बल्कि हमारा तो यही मत है कि आलोचना उस शास्त्रीय विधि को कहते हैं जो निष्पक्ष भावेन किसी वस्तु, पदार्थ व रचना मात्र के कला–कौशल, गुण–दोष एवं उत्तमानुतमता को सिद्ध करते हुए मानव समाज के उपयोर्था कला की सार्थकता प्रस्तुत करे।

विवेचना – वस्तुतः आलोचना का उद्भव तो उसी समय होगा जबकि मानव रूचि का विकास हुआ होगा क्योंकि मनुष्य मात्र में वस्तु निरीक्षण और उसके गुण–दोष, परीक्षण के साथ–साथ अपना निजी विचार व्यक्त करने की प्रवृत्ति सर्वदा ही स्वभाविक रूप से वर्तमान रहती है। हमारी आलोचना साहित्य में आलोचना के विभिन्न मानदण्ड भी प्रचलित हैं। हम आलोचना के निम्नलिखित प्रकार मानने के पक्षधर हैं –
1. आत्म प्रधान 2. सैद्धांतिक 3. व्याख्यात्मक 4. निर्णायात्मक 5. तुलनात्मक 6. मनोवैज्ञानिक 7. मार्क्सवादी आदि।

हिन्दी आलोचना का पूर्व रूप
यद्यपि गद्य की अन्य विधाओं की भाँति हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास आधुनिक काल में ही हुआ है पर डॉ0 भगीरथ मिश्र का कहना है " आधुनिक युग के पूर्व भी हिन्दी आलोचना के कुछ रूप प्रचलित थे। जिनका सम्बन्ध संस्कृत काव्यलोचन से था।"
वास्तव में संस्कृत साहित्य में सैद्धान्तिक आलोचना का विकास तो बहुत पहले हो चुका था। डॉ0 कुप्पू स्वामी जैसे विद्वान तो ऋग्वेद में ही आलोचना का पूर्व रूप स्वीकार करते हैं। जैसे विचारक आदि कवि वाल्मिकि को ही आदि आलोचक भी सिद्ध करते हैं।
सामान्यतया संस्कृत की सैद्धान्तिक आलोचना को काव्यशास्त्र या अलंकार शास्त्र कहा जाता है। इस अलंकार शास्त्र की निश्चित परम्परा भरत मुनि से प्रारम्भ होती है तथा पंडितराज जगन्नाथ की 'रसगंगाधर' की रचना के साथ ही इस परम्परा को निर्वाण माना जा सकता है।

मध्यकालीन हिन्दी आलोचना
डॉ0 विचारक हिन्दी आलोचना का आरम्भ नाभादास कृत 'भक्तमाल' से मानते हैं, पर भक्तमाल से भी पूर्व हमें आलोचना के दर्शन होते हैं। विद्यापति ने जो 'कीर्तिलता' में लिखा 'बालचन्द बिज्जावद् भाषा' उसका अभिप्रायः यह है कि विद्यापति की भाषा लोक हृदय का रंजन करने वाली है। जायसी भी 'जो यह पढ़ै कहानी, हम्ह संवरै दुई' लिखकर दंडी और वामन आदि की धारणाओं का अनुमान करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास में आलोचक का रूप अपेक्षाकृत भास्वर है और 'मानस' में कई प्रसंगों में उन्होंने श्रेष्ठ काव्य का मानदण्ड भी प्रस्तुत किया है – जैसे

निज कवित्त कोहि लाग न नीका।
सरस होउ अथवा होउ फीका।।

सूर की 'साहित्य लहरी' और नाभादास की 'रसमंजरी' लक्षण ग्रन्थ ही है। इसी प्रकार नाभादास का 'भक्तिमाल' और 'वार्ता साहित्य' को केवल जीवनी ही न समझना चाहिए क्योंकि उसमें कवि कर्म पर टिप्पणियाँ भी हैं। साथ ही 'सूर–सूर', तुलसीदास, उडुगन केसवदास, अब के कवि खद्योतसम जहँतहँ करत प्रकास, 'तुलसी' गंग दुवौभये, सुकविन के सरदार, इनके सरदार इनके काव्यन में मिलै भाषा विवध प्रकार, और कवि गढ़िया नन्द दास जड़िया' आदि सूक्तियाँ पूर्व मध्यकालीन आलोचना का एक रूप ही प्रस्तुत करती है।

उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल में आलोचना के सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों ही रूप विकसित हुये तथा कहते हैं कि केशवदास ने ही सर्वप्रथम विशुद्ध आचार्यत्व की प्रेरणा से 'कवि प्रिया' एवं 'रसिक प्रिया' जैसे काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनकी यह परम्परा सम्पूण रीतिकाल में विभिन्न मार्गों पर विभिन्न रूपों में विकसित हुई। रामचरित मानस और बिहारी सतसई के टीकाओं के रूप में व्यवहारिक या व्याख्यात्मक समीक्षा को विकसित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

आधुनिक आलोचना का सूत्रपात

आधुनिक आलोचना कसा सूत्रपात भारतेन्दु के समय से ही आरम्भ होता है और गद्य्य के अन्य रूपों की भाँति हिन्दी आलोचना के जन्मदाता भारतेन्दु ही सिद्ध होते हैं। उन्होंने नाटक नामक एक बृहत निबन्ध लिखा जिसमें नाटकों का संक्षिप्त इतिहास और नाटक सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भारतेन्दु ने नाटक नामक निबन्ध में आलोचना के कुछ मूल सिद्धान्त स्थिर किये हैं जो हमारे लिए बहुत ही मूल्यवान हैं। उनके अनुसार मनुष्य की वृत्तियाँ शाश्वत् न होकर परिवर्तनशील है। परिवर्तित वृत्तियों का ध्यान रखकर नाटक लिखना चाहिये। आधुनिक काल में देशप्रेम और समाज संस्कार के नाटक लिखे जाने चाहिये। साहित्य में आलौकिक विषयों की जगह लौकिक विषयों को जगह देनी चाहिये। भारतेन्दु के इस कृति में आलोचना की पांड्त्यि पूर्ण पद्धति के दर्शन होते हैं।

हिन्दी आलोचना के विकास में कवि वचन 'सुधा', 'हिन्दी प्रदीप', 'सार सुधानिधि', क्षत्रिय पत्रिका 'आनन्द कादम्बिनी', कवि व चित्रकार आदि भारतेन्दु युगीन पत्र–पत्रिकाओं ने अपना उल्लेखनीय योगदान दिया। सन् 1872 में प्रकाशित हिन्दी कविता नामक पहला आलोचनात्मक लेख भी भारतेन्दु ने ही लिखा है। इस सम्बन्ध में भारतेन्दु के अतिरिक्त पंडित 'बालकृष्ण भट्ट', पं0 बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमधन' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी की आधुनिक आलोचना भारतेन्दुयुग में ही मुखरित हुई।

द्विवेदीयुगीन आलोचना साहित्य

काशी नागरी प्रचारिणी नागरी सभा ने सन् 1897 से नागरी प्राचारिणी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया और हिन्दी आलोचना के इतिहास में एक नवींन युग आरम्भ हुआ। इस पत्रिका के प्रथम वर्ष में पं0 गंगा प्रसाद अग्निहोत्री का 'समालोचना', बाबू जगन्नाथ दास, रत्नाकर का 'समालोचनादर्श', पं0 अम्बिका दत्त व्यास का गद्यकाव्य 'मीमांशा' आदि उल्लेखनीय निबन्ध प्रकाशित हुये।

तीन वर्ष पश्चात् सन् 1900 में सुदर्शन और सरस्वती का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तथा सन् 1902 में 'समालोचक' प्रकाशित होने लगा। विचार पूर्वक देखा जाये तो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से हिन्दी आलोचना को एक नवींन प्रेरणा प्राप्त हुई है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कालिदास की निरंकुशता 'नैसध' चरित चर्चा और 'विक्रमांक देव चरित चर्चा' नामक आलोचनात्मक ग्रन्थों की रचना की है तथा उनके आलोचनात्मक निबन्धों के कुछ संग्रह भी प्राप्त हुये हैं।

द्विवेदीयुगीन अन्य प्रमुख आलोचकों में मिश्रबन्धु, श्री पदम्सिंह शर्मा, लाला भगवान दीन, श्री किशोरीलाल गोवस्वामी, श्री कृष्ण बिहारी मिश्र, श्री बद्रीनाथ भट्ट, श्री गौरी शंकर, हीराचंद ओझा इत्यादि की गणना की जाती है।

आचार्य शुक्ल की देन

वस्तुतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक नवीन युग के प्रवर्तक आलोचक के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे ही प्रथम आलोचक है जिन्होंने आलोचना के सैद्धांतिक और व्यवहारिक या प्रयोगात्मक इन दोनों रूपों में समुचित सामन्जस्य स्थापित किया है। शुक्ल जी के आलोचनात्मक विचारों का प्रकाशन सन् 1991 से मिलता है और सन् 1904 में उनका साहित्य शीर्षक लेख 'सरस्वती' पत्रिका में छपा है तथा आनन्द 'कादम्बिनी' में प्रकाशित अपनी भाषा पर विचार शीर्षक लेख में उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप शब्द विस्तार और शब्द योजना पर जो विचार व्यक्त किये हैं उनमें नवीनता भी है।

आचार्य शुक्ल द्वारा रचित आलोचनात्मक कृतियों में हिन्दी साहित्य का इतिहास, गोस्वामी तुलसीदास, जायसी ग्रन्थावली की भूमिका भ्रमर गीत सार की भूमिका, चिंतामणि प्रथम व द्वितीय भाग, सूरदास और रस मीमांसा आदि उल्लेखनीय है। वास्तव में तुलसी उनके आदर्श कवि है और बहुत कुछ तुलसी के रामचरित मानस पर ही उनके आलोचना के मानदण्ड भी आधारित है। उन्होंने तुलसी के आध्यात्मिक व सम्प्रदायवादी रूप की ओर ध्यान न देकर उनके मर्यादावाद को महत्व दिया है। उन्हें हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ आलोचक समझना चाहिये।

शुक्ल का समकालीन आलोचना

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समकालीन आलोचकों में से डॉ0 श्याम सुन्दरदास ने एक वैज्ञानिक की भांति निष्पक्ष रूप से पौर्वात्य और पाश्चात्य साहित्य सिद्धांतों का समन्यवयात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया है। उन्होंन भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिए 'भाषा रहस्य और भाषा विज्ञान' इतिहास के अध्ययनार्थ हिन्दी भाषा साहित्य तथा काव्य शास्त्र के अनुशीलन के लिए 'साहित्यालोचन' नामक ग्रन्थों का निर्माण किया। डॉ0 श्यामसुन्दर दास ने जिन सिद्धांतों की स्थापना की है। वे आज भी हिन्दी साहित्य को परखने की कसौटी का काम देते हैं।

शुक्ल जी द्वारा छायावादी काव्य के सम्यक मूल्यांकन के अभाव की प्रतिक्रिया में प्रसाद, निराला, पंथ और महादेवी ने छायावादी कविता की अन्तर्दृष्टि और उसके सौन्दर्य पक्ष का सम्यक विशेषण किया।

शुक्लोत्तर आलोचना

वस्तुतः शुक्ल जी के पश्चात् हिन्दी साहित्य में आलोचना का विविधमुखी आलोचना का विकास हुआ और हमारा आधुनिक आलोचनात्मक साहित्य अत्यंत प्रौण एवं परिष्कृत रूप धारण कर चुका है। इस प्रकार प्रत्येक प्राचीन एवं नवीन प्रमुख कवियों पर अनुसंधान कार्य के साथ–साथ इन पर स्वतंत्र रूप से समीक्षात्मक ग्रन्थ भी लिखे जा रहे हैं। चंदबरदाई, विद्यापती, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, देव, बिहारी, केशव, घनानन्द, भारतेन्दु, मैथलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पंत एवं महादेवी आदि पर कई आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

हमारे साहित्य में अनुसंधान कार्य भी बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। पी.एच.डी., डी.फिल. व डी.लिट. की उपाधि के लिये अनेक शोधपत्र भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं, पर यह भी सत्य है कि हिन्दी

में कई ऐसे आलोचक भी हैं जिनकी कृतियाँ इन शोध प्रबंधों से अधिक श्रेष्ठ है। इस प्रकार हिन्दी में गवेशणात्मक, आलोचनात्मक पद्धति का समुचित विकास करने वाले में विशेष उल्लेखनीय हैं – डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, पीताम्बर दत्त बडश्वाल, डॉ0 दीन दयाल गुप्त, डॉ0 केसरी नारायण शुक्ल, श्री रामनरेश त्रिपाठी, डॉ0 सत्येन्द्र, डॉ0 माता प्रसाद गुप्त, डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र, डॉ0 रामकुमार वर्मा, डॉ0 भगीरथ मिश्रा, डॉ0 मुन्शीराम शर्मा, डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत, डॉ0 लक्ष्मीसागर वाष्णेय व डॉ0 शम्भुनाथ सिंह आदि। इसके अतिरिक्त भी शताधिक शोधकर्त्ता विद्वान हैं।

शुक्लोत्तर आलोचना में डॉ0 गुलाबराय, आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी, डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ0 नरेन्द्र का विशेष उल्लेखनीय स्थान माना जाता है। गुलाबराय के सिद्धांत और अध्ययन, काव्य के रूप, साहित्य का सुबोध इतिहास, अध्ययन और आस्वाद आदि कई आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। उनमें समन्वयवादी आलोचना के दर्शन होते हैं। गुलाबराय अपनी सुबोध शैली के कारण बड़े लोकप्रिय रहे और स्वच्छता, सुबोधता व स्पष्टता उनकी शैली के प्रमुख तत्व हैं।

आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी की हिन्दी साहित्य, 20वीं शताब्दी, आधुनिक साहित्य, न्याय साहित्य, नये प्रश्न, जय शंकर प्रसाद, महाकवि सूरदास आदि कई उल्लेखनीय आलोचनात्मक कृतियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं।

डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका, सूर साहित्य, कबीर, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, विचार और चिंतक, साहित्य सहचर, कल्पलता, अशोक के फूल, मध्यकालीन धर्म साधना और विचार प्रवाह आदि अनेक कृतियों द्वारा हिन्दी आलोचना को समृद्ध किया है। द्विवेदी जी की आलोचना में संस्कृत साहित्य और भारतीय संस्कृति के ज्ञान की उज्ज्वल भावना दर्शनीय है।

डॉ0 नागेन्द्र छायावाद के प्रति सहानुभूति दृष्टिकोण और सौन्दर्यशास्त्र के सिद्धांत को लेकर आलोचना जगत में प्रविष्ट हुये। उनकी प्रथम कृति, छायावाद के कुशल शब्द शिल्पी सुमित्रानंदन पंत की आलोचना थी। इसके उपरान्त उनका साकेत एक अध्ययन और कुछ विशेष निबन्ध संकलनों का प्रकाशन हुआ तथा उनके फ्रायड के मनोविश्लेषण से प्रभावित समझा जाता रहा।

हिन्दी साहित्य में जब छायावादी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जब प्रगतिवाद का विकास हुआ तथा मार्क्सवादी जीवन दर्शन की कसौटी पर साहित्य की परख होने लगी। तब प्रगतिवादी आलोचना को विकसित होने का स्वाभाविकही अवसर मिला। प्रगतिवादी आलोचकों में विशेष उल्लेखनीय हैं – डॉ0 रामविलास शर्मा, श्री शिवदान सिंह 'चौहान', श्री प्रकाश चन्द्र गुप्त, श्री अमृतराय, डॉ0 नामवर सिंह, श्री नरेन्द्र शर्मा, श्री शेर बहादुर सिंह और डॉ0 देवराज आदि। इन प्रगतिवादी आलोचकों ने आलोचना की शास्त्रीय पद्धति को न ग्रहणकर सम्बन्धों पर विशेष प्रकाश डाला।

प्रगतिवादी आलोचना की प्रतिक्रिया के रूपों में फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र से प्रभावित मनोविश्लेषण आलोचना का भी हिन्दी में प्रचार हुआ। इस आलोचना पद्धति को अपनाने वालों में श्री इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, और नलिन विलोचना शर्मा प्रमुख हैं। इस मनोविश्लेषणात्मक आलोचना में व्यक्तिगत् अनुभूति को ही प्रधानता दी गयी।

इसी प्रकार प्रयोगवाद या नयी कविता का प्रचलन होने पर उसके समर्थकों ने भी इस काव्यधारा का स्वरूप स्पष्ट करने की ओर ध्यान दिया और आलोचक साहित्य में 'नव समीक्षा' को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। नव समीक्षा में अज्ञेय, डॉ रघुवंश, डॉ0 धर्मवीर भारती, डॉ0 जगदीश गुप्त, श्री विजय देव नारायण शाही, डॉ0 नामवर सिंह आदिक का उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्ष

उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी आलोचना अत्यंत तीव्रगति से विकसित हो रही है और उसके विकास में शताधिक विद्वान अपना बहुमूल्य योगदान दे रहे हैं पर यह भी कुछ सत्य है कि कतिपय आलोचक के अतिरिक्त हिन्दी में कई आलोचक की कृतियों में विचारों की गंभीरता, शैली की शालीनता और साहित्य के शाश्वत् आदर्श एवं ध्येय की मीमांसा आदि का अभाव सा है। इसी प्रकार अधिकांश आलोचक विभिन्न वर्गों में विभाजित हो गये हैं।

कभी–कभी तो पश्चात्य आलोचना का अनुसरण सा किया जाता है। संभवतः आलोचना का स्वस्थ विकास तभी सम्भव होगा, जब मानव मूल्यों पर आधारित आलोचना के उन प्रतिमानों की स्थापना की जाये, जो मानव व्यक्तिगत् और उसके कृतित्व के उपासक हो।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ॰ महेन्द्रनाथ राय – प्रगतिवाद
2. तुषारकान्त सिंह – प्रगतिवाद के प्रमुख हस्ताक्षर
3. विनोद कुमार सिंह – प्रयोगवाद के प्रमुख हस्ताक्षर
4. डॉ॰ देवी प्रसाद कुंवर – धर्मवीर भारती के साहित्य की मूल चेतना
5. कार्ल मार्क्स – अर्टिकल ऑन इण्डिया
6. श्री विन्द्रनाथ श्रीवास्तव – प्रगतिशील आलोचना
7. ए॰ आर॰ देसाई – सोसियोलाजिकल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म
8. पं॰ जवाहर लाल नेहरू – ऑटोबाइग्राफी
9. कालोनियल स्ट्रगल फॉर लिबरेशन
10. डॉ॰ रांगेय राघव – प्रगतिशील साहित्य के मापदण्ड
11. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास
12. महादेवी वर्मा – आधुनिक कवि
13. सुमित्रानंदन पन्त – हिन्दी साहित्य का इतिहास
14. आचार्य शान्ति प्रिय द्विवेदी – संचारिणी
15. डॉ॰ रामविलास शर्मा – रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना
16. डॉ॰ परशुराम शुक्ल – आधुनिक हिन्दी काव्य में यर्थाथवाद
17. श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द – नवयुग के गान
18. श्री सोहनलाल द्विवेदी – भैरवी
19. श्री शिवदान सिंह चौहान – साहित्यनुशीलन
20. श्री उमेश चन्द्र मिश्र – प्रगतिवादी काव्य
21. आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी – नया साहित्य नये प्रश्न
22. पं॰ जवाहर लाल नेहरू – विश्व इतिहास की झलक